आर्य्योद्देश्यरत्नमाला ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिता ।

ईश्वरादिरत्नलक्षणप्रकाशिका

आर्य्यभाषाप्रकाशोज्ज्वला ।

वैदिकयन्त्रालय

अजमेर

में छपी

संवत् १९५०

श्रीमद्दयानन्दाब्द १०

आषाढ़ कृष्ण

तीसरी बार मूल्य -)

१००० डाकव्यय)॥

इस ग्रन्थ के छापने का अधिकार किसी को नहीं है

COMPILED

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी 1913

34867

गुरु. विरजानन्द दण्डी सन्दर्भ पुस्तकालय

परिग्रहण क्रमांक ... 307

दयानन्द महिला महावि

ओ३म्

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला ॥

१ **ईश्वर**—जिस के गुण कर्म स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक अनादि और अनन्त आदि सत्य गुण वाला है और जिस का स्वभाव अविनाशी ज्ञानी आनन्दी शुद्ध न्यायकारी दयालु और अजन्मादि है जिस का कर्म्म जगत् की उत्पत्ति पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक २ पहुंचाना है उस को ईश्वर कहते हैं ॥

२ **धर्म्म**—जिस का स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपातरहित न्याय सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही एक मानना योग्य है उस को धर्म कहते हैं ॥

३ **अधर्म्म**—जिस का स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़ कर और पक्षपातसहित अन्यायी हो के विना परीक्षा करके अपना ही हित करना है जो अविद्या हठ अभिमान क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है वह अधर्म्म कहाता है ॥

४ **पुण्य**—जिस का स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्यभाषणादि

सत्याचार का करना है उस को पुण्य कहते हैं ॥

५ **पाप**——जो पुण्य से उलटा और मिथ्याभाषणादि करना है उसको पाप कहते हैं ॥

६ **सत्यभाषण**——जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उस को सत्यभाषण कहते हैं ॥

७ **मिथ्याभाषण**——जोकि सत्यभाषण अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है उस को मिथ्याभाषण कहते हैं ॥

८ **विश्वास**——जिस का मूल अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो उस का नाम विश्वास है ॥

९ **अविश्वास**——जो विश्वास से उलटा है जिस का तत्त्व अर्थ न हो

वह अविश्वास कहाता है ॥

१० **परलोक**——जिस में सत्यविद्या से परमेश्वर की प्राप्ति हो और उस प्राप्ति से इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परम सुख प्राप्त होना है उस को परलोक कहते हैं ॥

११ **अपरलोक**——जो परलोक से उलटा है जिस में दुःख विशेष भोगना होता है वह अपरलोक कहाता है ॥

१२ **जन्म**——जिस में किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म्म करने में समर्थ होता है उस को जन्म कहते हैं ॥

१३ **मरण**——जिस शरीर को प्राप्त हो कर जीव क्रिया करता है उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग हो जाना है उस को मरण कहते हैं॥

१४ **स्वर्ग**—जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है वह स्वर्ग कहाता है ॥

१५ **नरक**—जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उस को नरक कहते हैं ॥

१६ **विद्या**—जिस से ईश्वर से ले के पृथिवीपर्य्यन्त पदार्थों का सत्यविज्ञान हो कर उन से यथायोग्य उपकार लेना होता है इस का नाम विद्या है ॥

१७ **अविद्या**—जो विद्या से विपरीत है भ्रम अन्धकार और अज्ञानरूप है इस को अविद्या कहते हैं ॥

१८ **सत्पुरुष**—जो सत्यप्रिय धर्म्मात्मा विद्वान् सब के हितकरी और

महाशय होते हैं वे सत्पुरुष कहाते हैं ॥

१९ **सत्सङ्गकुसङ्ग**——जिसकरके झूट से छूट के सत्य की ही प्राप्ति होती है उस को सत्सङ्ग और जिस करके पापों में जीव फसे उस को कुसङ्ग कहते हैं ॥

२० **तीर्थ**——जितने विद्याभ्यास सुविचार ईश्वरोपासना धर्म्मानुष्ठान सत्य का सङ्ग ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं वे सब तीर्थ कहाते हैं क्योंकि जिन करके जीव दुःखसागर से तर जा सकते हैं ॥

२१ **स्तुति**——जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुण ज्ञान कथन श्रवण और सत्यभाषण करना है वह स्तुति कहाती है ॥

२२ **स्तुति का फल**——जो गुणज्ञान आदि के करने से गुणवाले

पदार्थों में प्रीति होती है यह स्तुतिका फल कहाता है ॥

२३ **निन्दा**——जो मिथ्याज्ञान मिथ्याभाषण झूठ में आग्रहादि क्रिया है जिस से कि गुण छोड़ कर उन के स्थान में अपगुण लगानाहोता है वह निन्दा कहाती है ॥

२४ **प्रार्थना**——अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्यवाले मनुष्य के सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं ॥

२५ **प्रार्थना का फल**——अभिमान का नाश आत्मा में आर्द्रता गुणग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है ॥

२६ **उपासना**—जिस से ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है उस को उपासना कहते हैं ॥

२७ **निर्गुणोपासना**—शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध संयोग वियोग हलका भारी अविद्या जन्म मरण और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जान कर जो उस की उपासना करनी है उस को निर्गुणोपासना कहते हैं ॥

२८ **सगुणोपासना**—जिसको सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् शुद्ध नित्य आनन्द सर्वव्यापक एक सनातन सर्वकर्त्ता सर्वाधार सर्वस्वामी सर्वनियन्ता सर्वान्तर्य्यामी मङ्गलमय सर्वानन्दप्रद सर्वापित सब जगत् का रचनेवाला न्यायकारी

दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जान के जो ईश्वर की उपासना करनी है सो सगुणोपासना कहाती है ॥

२८ **मुक्ति**——अर्थात् जिस से सब बुरे काम और जन्ममरणादि दुःखसागर से छूट कर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सुख ही में रहना है वह मुक्ति कहाती है ॥

३० **मुक्ति के साधन**——अर्थात् जो पूर्वोक्त ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्सङ्ग विश्वास तीर्थसेवन सत्पुरुषों का सङ्ग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना है ये सब मुक्ति के साधन कहाते हैं ॥

३१ **कर्त्ता**——जो स्वतन्त्रता से कर्मों का करने वाला है अर्थात् जिस के स्वाधीन सब साधन होते हैं वह कर्त्ता कहाता है ॥

३२ **कारण**——जिस को ग्रहण कर के करने वाला किसी कार्य वा चीज़ को बना सकता है अर्थात् जिस के विना कोई चीज़ बन नहीं सकती वह कारण कहाता है सो तीन प्रकार का है—

३३ **उपादान कारण**——जिस को ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाय जैसा कि मट्टी से घड़ा बनता है उस को उपादान कहते हैं ॥

३४ **निमित्त कारण**——जो बनाने वाला है जैसा कि कुम्हार घड़े को

बनाता है इस प्रकार के पदार्थों को निमित्त कारण कहते हैं ॥

३५ **साधारणकारण**——जैसेकि दंड आदि और दिशा आकाश तथा प्रकाश हैं इन को साधारण कारण कहते हैं ॥

३६ **कार्य**——जो किसी पदार्थ के संयोग-विशेष से स्थूल हो के काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है वह उस कारण का कार्य्य कहाता है ॥

३७ **सृष्टि**——जो कर्त्ता की रचना से कारणद्रव्य किसी संयोगविशेष से अनेक प्रकार कार्य्यरूप हो कर वर्त्तमान में व्यवहार करने योग्य होती है वह सृष्टि कहाती है ॥

३८ **जाति**——जो जन्म से ले के मरण-पर्यन्त बनी रहै जो अनेक व्यक्तियों में

एकरूप से प्राप्त हो, जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य गाय अश्व और वृक्षादि समूह हैं वे जातिशब्दार्थ से लिये जाते हैं ॥

३९ **मनुष्य**—अर्थात् जो विचार के विना किसी काम को न करे उस का नाम मनुष्य है ॥

४० **आर्य**—जो श्रेष्ठस्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यविद्यादिगुणयुक्त और आर्य्यावर्त्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं उन को आर्य्य कहते हैं ॥

४१ **आर्य्यावर्त्तदेश**—हिमालय विन्ध्याचल सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्र नदी इन चारों के बीच और जहां तक उन का विस्तार है उन के मध्य में जो देश है उस का नाम आर्य्यावर्त्त है ॥

४२ **दस्यु**——अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डांकू चोर हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य है वह दस्यु कहाता है ॥

४३ **वर्ण**——जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है ॥

४४ **वर्ण के भेद**——जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रादि हैं वे वर्ण कहाते हैं॥

४५ **आश्रम**——जिन में अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जांय उन को आश्रम कहते हैं ॥

४६ **आश्रम के भेद**——जो सहिष्णादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने

के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये, गृहाश्रम, जो विचार के लिये, वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये संन्यासाश्रम होता है वे चार आश्रम कहाते हैं ॥

४७ **यज्ञ**—जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेधपर्य्यन्त वा जो शिल्पव्यवहार और पदार्थविज्ञान जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है उस को यज्ञ कहते हैं ॥

४८ **कर्म**—जो मन इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टाविशेष करता है वह कर्म कहाता है वह शुभ अशुभ और मिश्रभेद से तीन प्रकार का है ॥

४९ **क्रियमाण**—जो वर्त्तमान में किया जाता है सो क्रियमाण कर्म कहाता है ॥

५० **सञ्चित**——जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है उस को संचित संस्कार कहते हैं ॥

५१ **प्रारब्ध**——जो पूर्व किये हुए कर्मों के सुख दुःखरूप फल का भोग किया जाता है उस को प्रारब्ध कहते हैं ॥

५२ **अनादि पदार्थ**——जो ईश्वर जीव और सब जगत् का कारण है ये तीन स्वरूप से अनादि हैं ॥

५३ **प्रवाह से अनादि पदार्थ**——जो कार्य जगत् जीव के कर्म और जो इन का संयोग वियोग है ये तीन परम्परा से अनादि हैं ॥

५४ **अनादि का स्वरूप**——जो न कभी उत्पन्न हुआ हो जिस का कारण

कोई भी न होवे अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध हो वह अनादि कहाता है ॥

५५ **पुरुषार्थ**—अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन शरीर वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है उस को पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५६ **पुरुषार्थ के भेद**—जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी प्राप्त का अच्छी प्रकार रक्षण करना रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सब के हित करने में खर्च करना है इन चार प्रकार के कर्मों को पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५७ **परोपकार**—अर्थात् अपने सब सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने

के लिये जो तन मन धन से प्रयत्न करना है वह परोपकार कहाता है ॥

५८ **शिष्टाचार**—जिसमें शुभ गुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग कियाजाता है वह शिष्टाचार कहाता है॥

५९ **सदाचार**—जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिस में सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है उस को सदाचार कहते हैं ॥

६० **विद्यापुस्तक**—जो ईश्वरोक्त सनातन सत्यविद्यामय चार वेद हैं उन को विद्यापुस्तक कहते हैं ॥

६१ **आचार्य्य**—जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे उस को आचार्य्य कहते हैं ॥

६२ **गुरु**——जो वीर्य्यदान से ले के भोजनादि कराके पालन करता है इस से पिता को गुरु कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा देवे उस को भी गुरु अर्थात् आचार्य्य कहते हैं ॥

६३ **अतिथि**——जिस की आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तरों के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है उस को अतिथि कहते हैं ॥

६४ **पञ्चायतनपूजा**——जीते माता पिता आचार्य्य अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है उस को पञ्चायतन पूजा कहते हैं ॥

६५ **पूजा**——जो ज्ञानादि गुण वाले का यथायोग्य सत्कार करना है उस को पूजा कहते हैं ॥

६६ **अपूजा**——जो ज्ञानादिरहित जड़ पदार्थ और जो सत्कार के योग्य नहीं है उस का जो सत्कार करना है वह अपूजा कहाती है ॥

६७ **जड़**——जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है उस को जड़ कहते हैं ॥

६८ **चेतन**——जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है उस को चेतन कहते हैं ॥

६९ **भावना**——जो जैसी चीज़ हो उस में विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिस का विषय भ्रमरहित हो अर्थात् जैसे को वैसा ही समझ लेना उस को भावना कहते हैं ॥

७० **अभावना**—जो भावना से उलटी हो अर्थात् जो मिथ्याज्ञान से अन्य में अन्य निश्चय मान लेना है जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेना है उस को अभावना कहते हैं ॥

७१ **पण्डित**—जो सत् असत् को विवेक से जानने वाला धर्म्मात्मा सत्यवादी सत्यप्रिय विद्वान् और सब का हितकारी है उस को पण्डित कहते हैं ॥

७२ **मूर्ख**—जो अज्ञान हठ दुराग्रहादि दोषसहित है उस को मूर्ख कहते हैं ॥

७३ **ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार**—जो बड़े और छोटों से यथायोग्य परस्पर मान्य करना है उस को ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार कहते हैं ॥

७४ **सर्वहित**——जो तन मन और धन से सब के सुख बढ़ाने में उद्योग करना है उस को सर्वहित कहते हैं ॥

७५ **चोरीत्याग**——जो स्वामी की आज्ञा के विना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है वह चोरी और उस का छोड़ना चोरीत्याग कहाता है ॥

७६ **व्यभिचार-त्याग**——जो अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के विना वीर्य्यदान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के विना विवाह का करना है यह सब व्यभिचार कहाता है उस को छोड़ देने का नाम व्यभिचारत्याग है ॥

७७ **जीव का स्वरूप**—जो चेतन अल्पज्ञ इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है वह जीव कहाता है ॥

७८ **स्वभाव**—जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उस का वह गुण भी नहीं छूटता इसलिये इस को स्वभाव कहते हैं ॥

७९ **प्रलय**—जो कार्यजगत् का कारणरूप होना अर्थात् जगत् का करनेवाला ईश्वर जिन २ कारणों से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्य्यों को रच के यथावत् पालन करके पुनः कारणरूप करके रखता है उस का नाम प्रलय है ॥

८० **मायावी**——जो छल कपट स्वार्थ में ही प्रसन्नता दम्भ अहङ्कारशठतादि दोष हैं इस सब को माया कहते हैं और जो मनुष्य इस से युक्त हो वह मायावी कहाता है ॥

८१ **आप्त**——जो छलादि दोषरहित धर्म्मात्मा विद्वान् सत्योपदेष्टा सब पर कृपादृष्टि से वर्त्तमान हो कर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश सदा करे उस को आप्त कहते हैं ॥

८२ **परीक्षा**——जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण वेदविद्या आत्मा की शुद्धि और सृष्टिक्रम से अनुकूल विचार के सत्याऽसत्य को ठीक २ निश्चय करना है उस को परीक्षा कहते हैं ॥

८३ **आठ प्रमाण**—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, और अभाव ये आठ प्रमाण हैं इन्हीं से सब सत्याऽसत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सक्ता है ॥

८४ **लक्षण**—जिस से जाना जाय जो कि उस का स्वाभाविक गुण है जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है इस को लक्षण कहते हैं ॥

८५ **प्रमेय**—जो प्रमाणों से जाना जाता है जैसा कि आंख का प्रमेयरूप अर्थ है जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है उस को प्रमेय कहते हैं ॥

८६ **प्रत्यक्ष**—जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट संबन्ध से ज्ञान होता है उस को प्रत्यक्ष कहते हैं ॥

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक .. 307
दयानन्द महिला महा

८७ **अनुमान**—किसी पूर्वदृष्ट पदार्थ के एक अङ्ग को प्रत्यक्ष देख के पश्चात् उस के अदृष्ट अङ्गी का जिस से यथावत् ज्ञान होता है उस को अनुमान कहते हैं ॥

८८ **उपमान**—जिसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के समतुल्य नीलगाय होती है जो कि सादृश्य उपमा से ज्ञान होता है उस को उपमान कहते हैं ॥

८९ **शब्द**—जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और पूर्वोक्त आप्त मनुष्य का उपदेश है उसी को शब्दप्रमाण कहते हैं ॥

९० **ऐतिह्य**—जो शब्दप्रमाण के अनुकूल हो जो कि असम्भव और झूंठा लेख न हो उसी को इतिहास कहते हैं॥

८१ **अर्थापत्ति**—जो एक बात के कहने से दूसरी बात विना कहे समझी जाय उस को अर्थापत्ति कहते हैं॥

८२ **सम्भव**—जो बात प्रमाण युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो वह सम्भव कहाता है ॥

८३ **अभाव**—जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल ले आ उस ने वहां देखा कि यहां जल नहीं है परन्तु जहां जल है वहां से ले आना चाहिये इस अभावनिमित्त से जो ज्ञान होता है उस को अभाव प्रमाण कहते हैं॥

८४ **शास्त्र**—जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हो और जिस करके मनुष्यों को सत्य सत्य शिक्षा हो उस को शास्त्र कहते हैं ॥

९५ **वेद**—जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं कि जिन से मनुष्यों को सत्य सत्य ज्ञान होता है उन को वेद कहते हैं॥

९६ **पुराण**—जो प्राचीन ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण इतिहास कल्प गाथा और नाराशंसी कहते हैं॥

९७ **उपवेद**—जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्रविद्या राजधर्म्म जो गान्धर्व वेद गानशास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र है इन चारों को उपवेद कहते हैं ॥

९८ *वेदाङ्ग—जो शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त छन्द और ज्योतिष् आर्ष सनातनशास्त्र हैं इनको वेदाङ्ग कहते हैं॥

* "शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः ज्योतिषामयनञ्चैव षडङ्गो वेद उच्यते ॥

९९ उपाङ्ग—जो ऋषिमुनिकृत मीमांसा वैशेषिक न्याय योग साङ्ख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं इन को उपाङ्ग कहते हैं ॥

१०० नमस्ते—मैं तुम्हारा मान्य करता हूं ॥

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्त्तिमगादियम्॥ १॥

श्रीयुत महाराज विक्रमादित्य जी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्लपक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन उक्त स्वामी जी ने आर्य्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्य्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया ॥

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक ... 307
... महिला महावि